गोरख-बानी

सबदी

बसती[1] न सुन्यं[2] सुन्यं[2] न बसती[1] अगम अगोचर ऐसा।
गगन[3]-सिषर[4] महिं बालक बोलै ताका नाँव धरहुगे[5] कैसा ॥१॥

परम तत्त्व तक किसी की पहुँच नहीं है (अगम)। वह इन्द्रियों का विषय नहीं है (अगोचर)। वह ऐसा है कि न उसे हम बस्ती कह सकते हैं, और न शून्य। न यह कह सकते हैं कि वह कुछ है (बस्ती) और न यह कि वह कुछ नहीं है (शून्य)। वह भाव (बस्ती) और अभाव (शून्य), सत् और असत् दोनों से परे है। (विशेष जोर देने की दृष्टि से 'सुन्यं न बस्ती' कह कर इसी बात को फिर से दोहराया है) वह आकास-मण्डल में बोलनेवाला बालक है। (आकाश-मण्डल में बोलनेवाला इस लिए कहा कि शून्य अथवा आकाश या ब्रह्मरंध्र में ही ब्रह्म का निवास माना जाता है, वहीं पहुँचने पर ब्रह्म साक्षात्कार हो सकता है। वहीं आत्मा को ढूँढ़ना चाहिए। बालक इसलिए कि जिस प्रकार बालक पाप-पुण्य से अछूता है, उसी प्रकार परमात्मा भी। जरा-मरण से दूर, काल से अस्पृष्ट सतत बाल-स्वरूप ही योगियों का साध्य आदर्श है। इसी लिए 'गोरख गोपालं' 'बूढ़ा बालं' कहे जाते हैं।) उनका नाम ही कैसे रक्खा जा सकता है? (क्योंकि वह तो नाम और रूप दोनों उपाधियों से परे है) ॥१॥

---

१. (क) बस्ती। २. (ख) सुनी; (ग) सून्य; (घ) सुनि। ३. (ख) गिगनि। ४. (क) सिषर मैं ; (ख), (ग) मडल पै (घ) मंडल मैं ; (ङ) शिषर महिं। ५. (ख) कहौ धु ; (ङ) धरोगे ; (ग), (घ) धरौगे।

अदेषि देषिबा देषि बिचारिबा अदिसिटि[१] राषिबा चीया[२]।
पाताल की गंगा ब्रह्मंड[३] चढ़ाइबा, तहां बिमल बिमल जल पीया ॥२॥
इहां ही आछै[४] इहां ही अलोप[५]। इहां ही रचिले तीनि त्रिलोक।
आछै संगैं[६] रहै जू वा। ता कारणि अनंत सिधा[७] जोगेस्वर हूवा ॥२॥
वेद कतेब[८] न षांणीं बांणीं[९]। सब ढंकी[१०] तलि आंणीं॥
गगनि सिषर महि[११] सबद प्रकास्या। तहं बूझै[१२] अलष बिनांणीं ॥४॥

न देखे हुए (परब्रह्म) को देखना चाहिए। देख कर उस पर विचार करना चाहिए। जो आँखों से देखा नहीं जा सकता उसे चित्त [चीअ, चीय] में रखना चाहिए। पाताल (मणिपूर चक्र) की गंगा (योगिनी शक्ति, कुंडलिनी) को ब्रह्मांड (ब्रह्मरंध्र, सहस्त्रार या सहस्त्रदल कमल) में प्रेरित करना चाहिए। वहीं पहुँच कर (योगी साक्षात्काररूप) निर्मल रस पीता है ॥२॥

अक्षय (आछै) परब्रह्म यहाँ अर्थात् सहस्त्रार या ब्रह्मरंध्र (शून्य) में ही है। यहीं वह गुप्त (अलोप) है। तीनों लोकों की रचना यहीं से हुई। (ब्रह्म का ही व्यक्त स्वरूप यह ब्रह्मांड है। ब्रह्मरंध्र रूप केंद्र ही से उसने अपना सर्वदिक् प्रसार किया है।) ऐसा जो अक्षय परब्रह्म सर्वदा हमारे साथ रहता है, उसी के कारण (उसी को प्राप्त करने के लिए) अनन्त सिद्ध योग मार्ग में प्रवेश कर योगेश्वर हो जाते हैं।

अलोप-गुप्त। निषेध वाचक 'अ' का बहुधा जन साधारण की बोली में व्यर्थ ही आगम हो जाता है। उस का कोई अर्थ नहीं लिया जाता; जैसे वृथा के लिए अविर्था ॥३॥

(परब्रह्म का ठीक ठीक निर्वचन) न वेद कर पाये हैं, न किताबी धर्मों की पुस्तकें और न चारों खानि की वाणी। ये सब तो उसे आच्छादन (ढंकी)

---

१. (क) अदृष्ट ; (ख) अदिसीटी ; (ग), (घ) अदिष्टि। २. (क) चिया। ३. (ख) गंगा ब्रह्म। ४. (घ) अछिक ; (ग) अषय। ५. (घ) अलोक। ६. (घ) अछै संगि, (ग) अछै संगै। ७. (घ) अनेक राजा। ८. (ख), (घ) वेदे न कतेवे। ९. (ख), (घ) षांणी न वांणी। १०. (क), ढांकी; (ग), (घ) ढाकी। ११. (ख) गीगनी चढ़ि; (ग) गगन सिषर चढ़ि। १२. (घ) बूझिलै; (ग) बूझिले।

अलष बिनांणीं दोइ दीपक[1] रचिलै तीन भवन[2] इक जोती ।
तास बिचारत[3] त्रिभवन सूझै[4] चुणिल्यौ मांणिक मोती ॥५॥
वेदे न सास्त्रे कतेवे न कुरांणे पुस्तके[6] न बंच्या[7] जाई ।
ते पद जांनां[8] बिरला जोगी और दुनी[9] सब धंधै लाई ॥६॥
हसिबा षेलिबा रहिबा रंग । कांम क्रोध न करिबा[10] संग ॥
हसिबा षेलिबा गाइबा गीत । दिढ[11] करि राषि आपनां[12] चीत[13] ॥७॥

के नीचे ले आये हैं । उन्होंने तो सत्य को प्रकट करने के बदले उसके ऊपर आवरण डाल दिया है । (यदि ब्रह्म के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान तुम्हें अभीष्ट है तो) ब्रह्मरन्ध्र (गगन शिखर) में समाधि द्वारा जो शब्द प्रकाश में आता है, उसमें विज्ञान रूप अलक्ष्य परब्रह्म का ज्ञान प्राप्त करो ॥४॥

विज्ञान स्वरूप अलक्ष्य परब्रह्म ने दो दीपकों (व्यक्त और अव्यक्त स्वरूप-सविकल्प और निर्विकल्प समाधि) की रचना की । उन दोनों दीपकों में अलक्ष्य का ही प्रकाश है । उसी एक ज्योति से तीनों लोक व्याप्त हैं । उस ज्योति पर विचार करने से तीनों लोक सूझने लगते हैं, त्रिलोक-दर्शिता आती है । और हंस-स्वरूप आत्मा ज्ञान-रूप मोतियों को चुगने लगता है तथा उसे माणिक्य रूप कैवल्यानुभूति हो जाती है । बिनाणीं = विज्ञानी ॥५॥

वेदों, शास्त्रों,—किताबी धर्मों की किताबों, कुरान आदि ग्रन्थों में जिस पर-ब्रह्मपद का वर्णन नहीं पढ़ा जा सकता, उस पद को विरले योगी जानते हैं । बाकी दुनिया तो माया में लिप्त होकर धंधों ही में लगी रहती है ॥६॥

हँसना चाहिए, खेलना चाहिए, मस्त रहना चाहिए किंतु कभी काम-क्रोध का साथ न करना चाहिए । हँसना, खेलना और गीत भी गाना चाहिए किंतु अपने चित्त को दृढ़ करके रखना चाहिए ॥७॥

---

१. (ङ) दीपग । २. (क) तीनि भुवन । ३. (ख) वीचार्‌या, (ग) विचारी । ४. (ख) त्रभवन नीपजै । ५. (ख), (ग), (घ) चुणि लै ६. (ग) पुस्तगे । ७. (ख), (ग), (घ) लिष्या । ८. (क) जांणंत; (ख), (ग) बाचत । ९. (क) में 'दुनी' नहीं है । १०. (घ) 'न करिबा' के स्थान पर 'का तजिबा' । ११. (ख) डिढि । १२. (ग) आंपणां; (घ) अपणां । १३. (ख) च्यंत; (ग), (घ) चित ।

हसिवा षेलिबा धरिबा ध्यांन । अहनिसि कथिबा ब्रह्म गियांन[१] ।
हसै षेलै न करै मन भंग । ते निह्चल सदा नाथ[२] कै संग ॥८॥
महंमद[३] महंमद न करि[४] काजी महंमद का विषम बिचारं ।
महंमद हाथि[५] करद[६] जे[७] होती लोहै[८] घड़ी[९] न सारं ॥९॥
सबदैं मारी सबदैं जिलाई ऐसा महंमद पीरं ।
ताकै[१०] भरमि न भूलौ[११] काजी सो बल नहीं सरीरं[१२] ॥१०॥

हँसना, खेलना और ध्यान धरना चाहिए । रात दिन ब्रह्म ज्ञान का कथन करना चाहिए । इस प्रकार (संयम पूर्वक) हँसते खेलते हुए जो अपने मन को भंग नहीं करते वे निश्चल होकर ब्रह्म के साथ रमण करते हैं ॥८॥

हे काजी 'मुहम्मद मुहम्मद' न करो । (क्योंकि तुम मुहम्मद को जानते नहीं हो । तुम समझते हो कि जीव हत्या करते हुए हम मुहम्मद के मार्ग का अनुसरण कर रहे हैं) परन्तु मुहम्मद का विचार बहुत गंभीर और कठिन है । मुहम्मद के हाथ में जो छुरी थी वह न लोहे की गढ़ी हुई थी न इस्पात की जिससे जीव हत्या होती है । करद=क़र्द (अरबी) ॥९॥

(जिस छुरी का प्रयोग मुहम्मद करते थे वह सूक्ष्म छुरी शब्द की छुरी थी ।) वह शिष्यों की भौतिकता को इसी शब्द की छुरी से मारते थे जिससे वे संसार की विषय-वासनाओं के लिए मर जाते थे । परन्तु उन की यह शब्द की छुरी वस्तुतः जीवन-प्रदायिनी थी क्योंकि उन की वहिर्मुखता के नष्ट हो जाने पर ही उनका वास्तविक आभ्यंतर आध्यात्मिक जीवन आरम्भ होता था । मुहम्मद ऐसे पीर थे । हे काजियो, उनके भ्रम में न भूलो, तुम

१. (ख) अहिनिसि...गिनांन । २. (क) रहै सिधों के संग; (ख) रमै सिध कै संगि । ३. (ख), (ग), (घ) में यह शब्द अधिकतया 'महमंद' लिखा गया है, केवल 'ख' में एक जगह महंमद लिखा है । ४. (ग) में 'न करि' के स्थान पर 'करिसि' है, जिसे प्रश्नवाचक मानना चाहिए (घ) 'म करिसि' । ५. (ख) हाथे । ६. (ग) करंदा । ७. (घ) जू ; (ख) में कुछ नहीं । ८. (ग), (घ) 'लोहै' के पहले 'सो' । ९. (क) और (ख) गढ़ी । १०. (ख) ऐसे । ११. (क) भ्रमि मति भूलै । १२. (ग), (घ) में यह साखी नहीं है । (ख) में यह साखी इस प्रकार आरंभ होती है— सबदही मारी सबदही जीलाई ।

नाथ कहंतां सब जग[1] नाथ्या गोरष कहतां[2] गोई।
कलमा का गुर महंमद होता पहलैं मूवा[3] सोई ॥११॥
सारमसारं गहर गंभीरं गगन[4] उछलिया नादं[5]।
मानिक[6] पाया फेरि लुकाया झूठा वाद-बिवादं[6] ॥१२॥
कोई वादी कोई विवादी[7] जोगी कौं बाद[8] न करनां[9]।
अठसठि तीरथ समंदि समावैं यूँ जोगी कौं गुरुमुषि जरनां ॥१३॥

उन की नकल नहीं कर सकते। तुम्हारे शरीर में वह (आत्मिक) बल ही नहीं है, जो मुहम्मद में था। (क्योंकि गोरख के अनुसार, मुहम्मद जिन बातों को आध्यात्मिक दृष्टि से कहते थे, उन को उन के अनुयायियों ने भौतिक अर्थ में समझा) ॥१०॥

(शब्दों के बाह्यार्थ पर नहीं जाना चाहिए, उन का तत्वार्थ ग्रहण करना चाहिए। इसी तत्त्वार्थ-दृष्टि के अभाव में) माया को अपने वश में रखने-वाले 'नाथ' का नाम लेते हुए भी सारा संसार माया के द्वारा नाथ डाला गया। (गुप्त आध्यात्मिक अंतर्जीवन को जगाने वाले—गोरष सो जिनि गोय उठाली करती षार न लावै—नानक, 'ग्रंथ', पृ० ४७३) गोरख का नाम लेते हुए भी आध्यात्मिक जीवन गुप्त ही रह गया। इसी प्रकार खाली कलमा के शब्द भी किसी का उद्धार नहीं कर सकते। कलमा को चलाने वाले मुहम्मद भी बचे न रह सके। (योगी अपने गुरुओं को इसी शरीर से अमर मानते हैं।) ॥११॥

साधना के द्वारा ब्रह्मरंध्र तक पहुँचने पर अनाहत नाद सुनाई दिया, जो सार का भी सार और गंभीर से गंभीर है। इससे ब्रह्मानुभूति-रूप माणिक्य हाथ लगा। परन्तु वह माणिक्य व्यक्तिगत-साधना से प्राप्त होने पर भी दुनिया के लिए छिपा ही रहा। (वह स्वसंवेद्य है, वाणी से किसी को बताया नहीं जा सकता। इस अनुभूति के मिल जाने पर ज्ञात हुआ कि सारा वाद-विवाद झूठा है। (सच्ची तो केवल अनुभूति है।) ॥१२॥

विभिन्न मत वाले पण्डित अपने मत का मंडन और दूसरों के मत का

१. (ग) जुग। २. (ग) कहतो। ३. (ग) पैहली; (घ) पहली। ४, (ख) गीगनी; (घ) गिगन। ५. (ख); (घ) माणिक, (ग) माणक। ६. (ख) नाद... विवाद। ७. (ख) नादी। ८. (ख) रोस। ९. अधिकतर (ख), (ग) और (घ) में 'करणां', 'जरणां, हैं, केवल (ख) में 'करना' पाठ है।

उतपति हिन्दू जरणां जोगी अकलि परि मुसलमांनीं[1]
ते राह चीन्हों[2] हो काजी मुलां[3] ब्रह्मा बिस्न महादेव मांनीं[4] ।१४।
मांन्यां सबद चुकाया दंद । निह्चै राजा भरथरी परचै गोपीचंद ।
निह्चै नरवै भए निरदंद । परचै जोगी परमानंद[5] ॥१५॥

खंडन करने में लगे रहते हैं। किन्तु योगी को इस प्रकार के शास्त्रार्थ में नहीं पड़ना चाहिए। जैसे सभी नदियों का (भारत की नदियों की संख्या कहीं अड़सठ और कहीं बहत्तर मानी जाती है। तीर्थ सब नदियों ही पर हैं।) जल समुद्र ही में समाता है उसी प्रकार शिष्य का विश्वास गुरुमुख वचनों में होना चाहिए। उन्हीं वचनों का मनन-चिंतन द्वारा पाचन करके आत्मीकरण करने में उन्हें दत्तचित्त रहना चाहिए। जरना=जीर्ण करना, पचाना, पूर्णरूप से स्वायत्त करना जो पूर्ण विश्वास के बिना असंभव है ॥१३॥

उत्पत्ति से हम हिन्दू हैं, जरणां के कारण जोगी हैं और अक्ल से मुसलमानी पीर। (जोगी हिन्दू जन समुदाय में से ही चेला मुड़ाया करते हैं। योग सिद्धि के लिए यह आवश्यक है कि गुरुमुख से पाये हुए ज्ञान को मनन, चिंतन और साधना के द्वारा स्वानुभव में ला सकें। मुसलमानों में जिस प्रकार पीरों का मान है, उसी प्रकार योग-मार्ग में गुरुओं का। नाथों ने तो 'पीर' शब्द को ही स्वीकार कर लिया है। उनके 'महंत' महंत नहीं, पीर कहलाते हैं। किन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि वस्तुतः कोई तात्विक मुसलमानी प्रभाव उनपर पड़ा हो।) हे मुल्लाओ और काजियो! उस मार्ग को पहिचानो जिसे ब्रह्मा, विष्णु और महादेव तक ने माना है ॥१४॥

जिसने गुरु वचनों को माना उसकी दुविधा नष्ट हो गई। इसी निश्चय ने राजा भर्तृहरि को बनाया, उन्हें सिद्धि दी और राजा गोपीचन्द को ब्रह्म-परिचय (साक्षात्कार) कराया। इसी निश्चय ने नरपतियों (नरवै) को निर्द्वन्द्व बना दिया जिस से आत्म-साक्षात्कार के द्वारा वे पूर्ण परमानन्द प्राप्त करने वाले योगी हो गये ॥१५॥

---

१. (ग) मुसलमान; (घ) मुसलमानां। २. (ख) चीन्हत; (ग) चीन्हि हो। ३. (ग) मुसलां। ४. (ख) जो; (व) ते। ८. (ग) मान्यां; (घ) मानां। ५. ([illegible] चरण किसी में नहीं है।

अह निसि[1] मन लै[2] उनमन रहै, गम की छांड़ि[3] अगम की कहै।
छाड़ै[4] आसा रहै निरास, कहै ब्रह्मा हूँ[5] ताका दास ॥१६॥
अरधै जाता उरधै धरै, कांम दग्ध जे[6] जोगी करै।
तजै अल्यंगन[7] काटै[8] माया, ताका बिसनु[9] पषालै पाया ॥१७॥
अजपा जपै सुंनि[10] मन धरै, पांचों[11] इंद्री[12] निग्रह[13] करै।
ब्रह्म अगनि मैं होमै काया, तास महादेव बंदै पाया ॥१८॥
धन जोवन की करै न[14] आस, चित्त[15]न राषै कांमनि[16] पास।
नाद बिंद[17] जाकै घटि जरै, ताकी सेवा पारवती करै ॥१९॥

जो रात दिन बहिर्मुख मन को उन्मनावस्था में लीन किये रहता है, गम्य जगत् की बातें छोड़ कर अगम्य आध्यात्मिक क्षेत्र की बातें करता है, सब आशाओं को छोड़ देता है, कोई आशा नहीं रखता, वह ब्रह्मा से भी बढ़ कर है, ब्रह्मा उसका दासत्व स्वीकार करता है। १६॥

नीचे की ओर गति वाले रेतस् (शुक्र) को ऊपर की ओर प्रेरित करे, ऐसा ऊर्ध्वरेता होकर जो काम को भस्म कर देता है, कामिनी का आलिंगन छोड़ देता है और माया को काट डालता है, (जिसके चरण पखारने से गंगा निकली है, वह) विष्णु भी उस जोगी के चरण धोता है। उरध=ऊर्ध्व का अपभ्रंश। इसी के अनुकरण पर 'अधः' से अरध बना है। ॥१७॥

जो अजपा का जाप करता है, ब्रह्मरंध्र (शून्य) में मन को लीन किये रहता है, पाँचों इन्द्रियों को अपने वश में रखता है, ब्रह्मानुभूति रूप अग्नि में अपने भौतिक अस्तित्व (काया) की आहुति कर डालता है, (योगीश्वर) महादेव भी उसके चरणों की वंदना करता है ॥१८॥

जो धन यौवन की आशा नहीं करता, स्त्री में मन नहीं लगाता, जिसके शरीर में नाद और बिंदु जीर्ण होते रहते हैं, पार्वती भी उसकी सेवा करती है ॥१९॥

---

१. (ख) अहि निसि, (घ) अहनिस। २. (क) ले, (घ) जे। ३. (ग) छोड़ि। ४. (ग) छाँडै। ५. (ख) हु; (ग) मै; (घ) मैं। ६. (ख) जो। ७. (ख) अलिगण (अलिगण ?) (ग) आलिंगन (आलिंमन ?) ८. (ख) त्यागै, (घ) छाडै। ६. (क) विष्नु; (ख) वीसन; (घ) विष्न। १०. (ख); (घ) सुनि, (ग) सून्य। ११. (ख) पाँचु; (ग) पाँचु; (घ) पाँचूँ। १२. (ख), (घ) यंद्री। १३. (ख) न्यग्रह। १४. (ख), (ग) न करै। १५. (क), (ख), (ग), (घ) चित। १६. (ख), (घ) कामाणी। १७. (ख), (ग)—व्यंद।

बालै जोबनि[1] जे नर जती, काल दुकालां[2] ते[3] नर सती।
फुरतैं[4] भोजन अलप अहारी, नाथ कहै सो[5] कायां हमारी ॥२०॥
सबदहिं ताला सबदहिं कूँची,[6] सबदहि सबद जगाया।
सबदहिं सबद सूं[7] परचा हूआ, सबदहिं[8] सबद समाया ॥२१॥
पंथ बिन[9] चलिबा[10] अगनि बिन जलिबा, अनिल[11] तृषा जहटिया[12]।
ससंवेद[13] श्री(गुर)गोरष(नाथ)कहिया[14] बूझिल्यौ[15] पंडित[16] पढ़िया॥२२

बाल्यावस्था और यौवन में जो व्यक्ति संयम के द्वारा इन्द्रिय-निग्रह करते हैं वे समय-असमय में सर्वदा अपने सत पर स्थिर रह सकते हैं। वे फुरती से भोजन करते हैं, कम खाते हैं, नाथ कहते हैं कि वे हमारे शरीर हैं। उनमें और मुझ में कुछ अंतर नहीं ॥२०॥

शब्द ही ताला है, वही परमतत्त्व को बन्द किये रहता है। शब्द की धारा ही सूक्ष्म परमतत्व पर स्थूल आवरणों को बाँध कर सृष्टि का निर्माण करती है। इसलिए मूल अधिष्ठान तक पहुँचने के लिए शब्द की धारा पकड़ कर वापिस आना पड़ता है, इसीलिए वही कुंजी भी है, जिससे ताला खोला जाता है। गुरु के शब्द में भी परम तत्त्व रहता है जो उसी के मनन-चिंतन से खुलता है। अंतरी शब्द (नाद) का आगरण इसी शब्द (गुरु उपदेश) के कारण होता है। जब इस प्रकार स्थूल शब्द के द्वारा सूषम शब्द से परिचय हो जाता है तब स्थूल शब्द सूषम मूल शब्द में समा जाता है ॥२१॥

मार्ग के विना चलना, अग्नि के विना जलना, वायु से प्यास का बुझना

---

१. (ख) (ग) जोवन। २. (ख) दुकाले। ३. (ख) जे; (ग) ये। ४. (ग) (घ) फुरसै, (ख)फुरते। ५. (ग) सै। (घ) ते। ६. (ख) में अंतिम शब्दी यों आरंभ होती है सबदहि कूची सबदहि ताला" संस्कृत अनुवाद में भी यही क्रम है। (क) सबदहि सबद जब कूँची। ७. (क) जब; (ख) में नहीं; (ग) स्यूँ। ८.(ख)(ग), (घ) में 'सबदहि' से पहले तब। ९. (ख) वीणि; (घ) बिण। १०. सब प्रतियों में 'पुलिब' पाठ है। संस्कृत अनुवाद 'गमनं' किया गया है। सम्भवतः किसी पुरानी प्रति में से 'चलिबा' पुलिबा के रूप में गलत नकल हो गया और वही पाठ चल पड़ा। ११. संस्कृत अनुवाद में इसका अर्थ 'विना जलं' किया गया है, जिसके लिए चारों में से किसी प्रति में भी आधार नहीं है। १२. (ख) न्युदटीया (वा)। १३. (ख),(ग), (घ) सुसमवेद। (१४. (ख),(ग),(घ) कथिया १५ (ख) बोल्योरे; (ग), (घ) पूछिले। १६. (ख) प्यंडता; (घ) पिंडत।